बी. ए. प्रोग्राम प्रथम वर्ष हिंदी भाषा 'क'

इकाई 10-ए

1-विषय समसामयिक सामाजिक विषयों पर परिचर्चा, टिप्पणी कार्य, वार्ता, संवाद आदि का लेखन, आलोचनात्मक दृष्टि का विकास।

1. विषय
2. सार/विषय क्षेत्र
3. विषय प्रवेश
4. विषय प्रतिपादन

(पाठ, दृश्य-श्रव्य, रेखांकन)

5. विवेचन
6. निष्कर्ष

7-पाठ के पारिभाषिक शब्द

8. अभ्यास प्रश्न
9. प्रयोगादि (रचनात्मक योगदान)
10. संदर्भ

2-विषय क्षेत्र/सार

लेखन कार्य व्यक्ति की सृजनात्मकता की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। सृजनात्मकता प्रत्येक व्यक्ति के भीतर नहीं होती। केवल वही व्यक्ति सृजनात्मक हो सकता है, जो मन के भीतर निरन्तर चल रहे मंथन का दबाव अनुभव करे तथा अभिव्यक्ति की अनिवार्यता को आवश्यक मानकर उस दबाव को रूपाकार प्रदान करने की चेष्टा करे। लेखन इसी सृजनात्मकता को दूसरों के समक्ष उपस्थित करने की चेष्टा है।

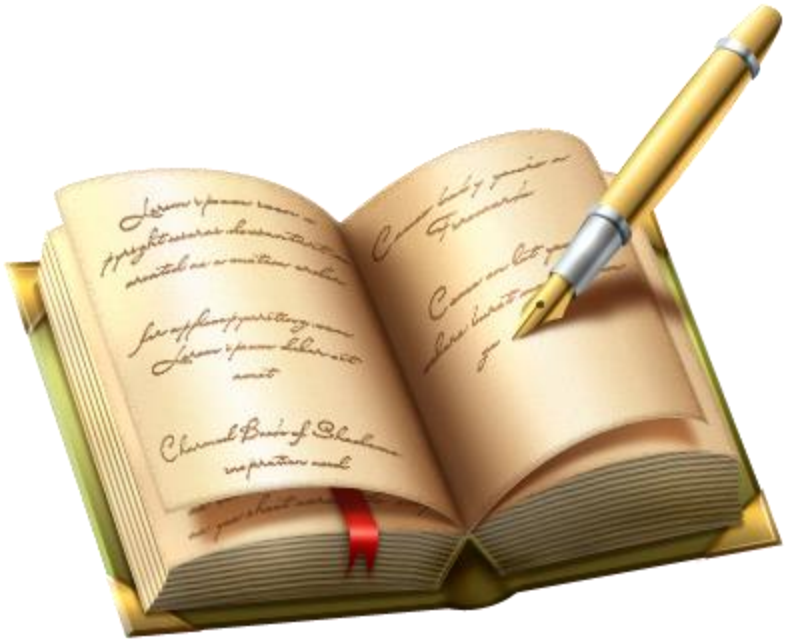

बालक के हृदय में अनेक भाव प्रस्फुटित होते हैं परन्तु बालक उन मनोभावों को लेखनीबद्ध नहीं कर पाता। युवा होते-होते ये विचार ज्यों-ज्यों और अधिक तीव्र होने लगते हैं, त्यों-त्यों विचारों की गहनता भावात्मक अनुभूति के साथ मिलकर हृदय और मस्तिष्क पर अधिकार करने लगती है। भाषा की समझ और भाषा पर अधिकार इस अनुभूति को विशिष्ट बना देते हैं। लेखनी इन तीनों के समन्वित रूप की ही अभिव्यक्ति करती है।

इस इकाई के अन्तर्गत लेखन के महत्व पर विचार करते हुए विभिन्न प्रकार के लेखन और उनसे संबंधित स्थितियों परिस्थितियों को समझने व जानने की चेष्टा की गई है।

भावों का प्रस्फुटन प्रत्येक क्षण नहीं होता। वह क्षण विशिष्ट होता है जब भावों की एक बूंद किसी विशेष नक्षत्र (स्वाति-नक्षत्र) में लेखनीबद्ध होकर अर्थात सीप में गिरकर मोती का रूप धारण कर लेती है। इस मोती का महत्व अनमोल है। यही कारण है कि हमारे समाज में लेखक को कुछ विशिष्ट दर्जे का माना जाता है। प्रतिभावान लेखक अपनी प्रतिभा से समाज को निरन्तर प्रेरित करने का कार्य करते हैं। परन्तु व्युत्पत्ति एवं अभ्यास भी लेखन कार्य को सुचारू एवं नियमित करने में अपनी भूमिका निभाते हैं।

लेखन का उद्देश्य मात्र अपने विचारों को दूसरों तक पहुँचाना मात्र न होकर दर्शक/श्रोता/पाठक को उद्वेलित करना भी है। भाव एवं विचार का उद्वेलन वही लेखक कर सकता है, जिसकी दृष्टि

किसी भी विषय पर आलोचनात्मक गहनता से विचार करने की क्षमता रखती हो। आलोचनात्मक दृष्टि से विषय की पड़ताल करते हुए सूक्ष्म बिन्दुओं को रेखांकित करना तथा उन सूक्ष्म बिन्दुओं पर गहनता से विचार करके पाठक के भीतर भी आलोचनात्मक दृष्टि का विकास करना लेखक का उत्तरदायित्व है।

विधाचयन : प्रत्येक व्यक्ति/लेखक समस्त विधाओं में लेखन नहीं कर सकता। विशिष्टानुभव के समान विधा चयन भी विशिष्ट क्रिया है। बेहतर कथा लेखक बेहतर कवि भी हो, यह आवश्यक नहीं। ऐसे में अपनी शैली के वैशिष्ट्य के अनुरूप लेखक विधा विशेष का चयन करता है। किसी भी विधा का लेखन हो परन्तु उसकी महत्वपूर्ण शर्त है- सम्प्रेषण।

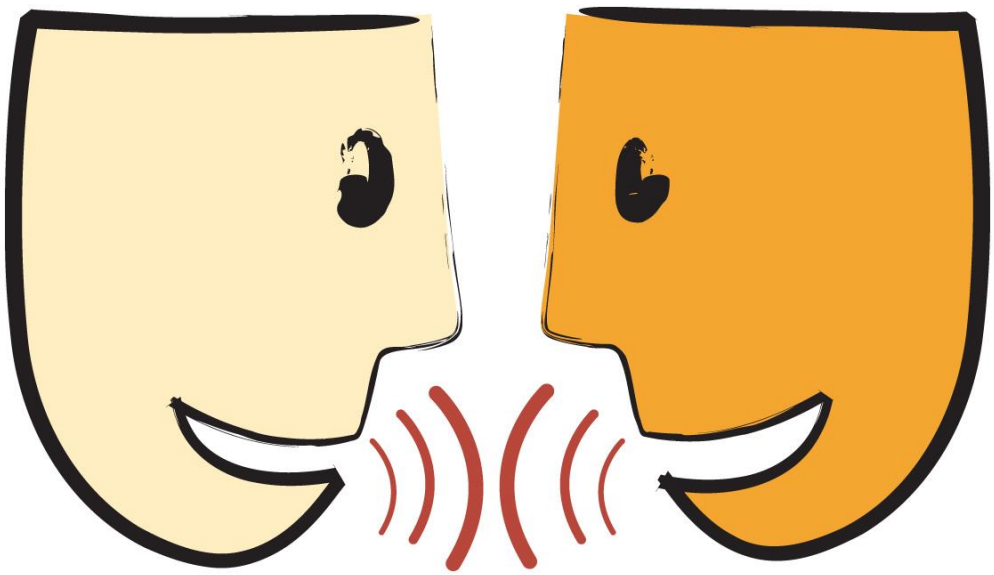

भाषा सम्प्रेषण ; भाषा एवं सम्प्रेषण का प्रश्न ही लेखन कार्य की जीवन्तता और जीवटता को बनाए रखता है। हमने जो कहा वही संपूर्ण नहीं है, बल्कि उसे किस प्रकार कहा तथा वह किस तक किस रूप में पहुँचा, यह जानना भी आवश्यक है। किसी विधा के रचनाकार का दायित्व मात्र आत्मसंतुष्टि के लिए रचना लिखकर समाप्त नहीं होता, बल्कि पाठक उसे किस रूप में ग्रहण करेगा, इस पर भी विचार करना लेखक का ही उत्तरदायित्व है।

शब्द : इस इकाई में विभिन्न विधाओं की रूपरेखा बनाकर उनकी शैली, वैशिष्ट्य, सम्प्रेषण क्षमता पर विचार किया गया है। लेखन की परिपक्वता रचना को विशिष्ट बनाती है और परिपक्व भी करती है। प्रत्येक रचना का मूलभूत तत्व है- शब्द। शब्द का प्रस्तुतीकरण भी रचना को स्फूर्ति प्रदान करता है। कई विधाएँ शब्द और संगीत के मिश्रण से बनती हैं तो किसी विधा में शब्द की भीतरी ध्वनियाँ ही झंकृत होने लगती हैं। इन पक्षों को केन्द्र में रखते हुए विधाओं के स्वरूप पर

विमर्श किया जा सकता है।

3 विषय प्रवेश :

समसामयिक का अर्थ है- वर्तमानकालिक अर्थात आज की समझ रखना। वर्तमान सदैव पूर्व पर आधारित होता है व भविष्य की रूपरेखा तैयार करता है। समसामयिक विषयों पर लेखन के लिए अपने आस-पास के समाज की समझ, राजनीतिक विषयों की जानकारी, आर्थिक हलचल-उतार-चढ़ाव, सामाजिक-राजनीतिक संबंधों के प्रति जागरुकता होनी आवश्यक है। व्यक्ति की जागरुकता ही उसकी लेखनी को सशक्त बनाती है।

बौद्धिकता भावात्मकता का योग : किसी भी विधा की रचना के लिए पृष्ठभूमि की जानकारी का होना जरूरी है। पृष्ठभूमि से जुड़े संदर्भों की सही ढंग से पड़ताल करते हुए आधुनिक दृष्टिकोण से रचना करके ही किसी विधा से न्याय किया जा सकता है। आधुनिक होने का अर्थ है- तार्किक एवं बौद्धिक दृष्टि से विषय की परख करना। परन्तु मात्र बौद्धिक होकर किसी विधा की रचना करना संभव नहीं अतः भावना का योग ही रचना को श्रेष्ठ बना सकता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने बुद्धि एवं हृदय के योग को काव्य रचना के लिए आवश्यक माना है। बुद्धि एवं हृदय का समन्वय विधा के शरीर में प्राण संचार करता है। अतः मात्र निश्चयात्मिका बुद्धि ही नहीं रागात्मिका वृत्ति भी विधाओं के लिए जीवनदायिनी मानी गयी है।

सूचना, **शिक्षा**, **मनोरंजन** : किसी भी विषय पर लेखन किया जाए, उसके तीन मूल दायित्वों से इंकार नहीं किया जा सकता-सूचना, शिक्षा और मनोरंजन। इन तीनों में से प्रधानता किसी एक पक्ष की हो सकती है पर अन्य दो की उपस्थिति भी किसी- न -किसी रूप में अपरिहार्य है। लेखन किस माध्यम के लिए किया जा रहा है, यह भी देखना आवश्यक है। मीडिया (प्रिण्ट, रेडियो, टीवी) के लिए किए गए लेखन में उपरोक्त तीनों तत्वों का सम्मिश्रण होता है। विषय प्रायः समसामयिक एवं समाज को दिशा प्रदान करने वाले होते हैं अतः सूचना ऐसी हो जो मार्गदर्शन भी करे एवं ज्ञानवर्धन भी। आज सूचनाओं का भण्डार लगा हुआ है। ये सूचनाएँ जिस सीमा तक लेखक को उपलब्ध हैं, उतना ही उसका लेखन प्रभावी माना जाएगा।

सूचना क्रांति : आज का युग निरन्तर परिवर्तित होती मानसिकता का युग है। मानस हर एक क्षण नए विचारों से परिचित होना चाहता है। विचार भी ऐसे जो उसे राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय विकास से जोड़ सकें। ऐसे में सूचनाओं का विस्फोट हो चुका है। समाज में हो रहे गुणात्मक परिवर्तन-परिवर्धन से हटकर लेखक भी निष्प्राण हो जाएगा और उसका लेखन भी। अतः सूचना क्रांति के इस युग में लेखक को सदैव सजग रहकर कार्य करना आवश्यक ही नहीं अपरिहार्य है।

भविष्य की रूपरेखा : व्यक्ति मन मात्र किसी सूचना प्राप्ति से ही संतुष्ट नहीं होता, उसे इन सूचनाओं के माध्यम से भविष्य की आहटों को ज्ञान भी होना आवश्यक है। बाल्यावस्था से ही व्यक्ति मन शिक्षा प्राप्ति की ओर उन्मुख होता है अतः लेखन कार्य के अंतर्गत सूचना, शिक्षा एवं मनोरंजन का सम्मिलन आवश्यक है।

भाषा : भाषा सम्प्रेषण का महत्वपूर्ण साधन है। रचनाकार का भाषा पर यदि अधिकार नहीं होगा तो वह अपने हृदय के भावों को अभिव्यक्त करने में सक्षम नहीं होगा। आप सभी के हृदय में किसी वस्तु, स्थान, घटना को देखकर अनेक विचार आते होंगे परन्तु क्या हम सभी भाषा की जादुई शक्ति को धारण करने में सक्षम होते हैं? उत्तर है- नहीं क्योंकि कहा जाता है कि सरस्वती की कृपा सभी पर नहीं होती। भाषा के बिना न तो ज्ञान का आदान-प्रदान संभव है न कि उसका संरक्षण।

मौखिक वार्तालाप अधिकांश व्यक्ति किसी न किसी सीमा तक करने में सक्षम होते हैं परन्तु उसे लिखित रूप देकर आत्मानुभूति को जगत्-अनुभूति में ढालने का कार्य सभी नहीं कर सकते। इसके लिए भाषा एवं लिपि का ज्ञान आवश्यक है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने रचनाकर्म को स्वान्तः सुखाय माना है परन्तु यह स्वान्तः सुखाय भी परहित में ही परिणति प्राप्त करता है। तुलसीदास जी कहते भी हैं-

कीरति भणति भूति भली सोई।

सुरसरि सम सब कह हित होई।

प्रत्येक विधा भाषा की सजगता के साथ परहित की भावना से समन्वित होकर ही संपूर्ण समाज के लिए सुखकारी हो सकती है।

शैली : प्रत्येक विधा स्वयं में विशेष शैली की मांग रखती है। रचना विशेष के शिल्प एवं व्यक्ति/लेखक की रचनात्मकता मिलकर किसी भी विधा को श्रेष्ठ बनाते हैं। कुछ कार्यक्रम मात्र मनोरंजन के लिए लिखे जाते हैं परन्तु अधिकांश कार्यक्रमों को शैक्षिक उद्देश्य के तहत तैयार किया जाता है। ग्रामीणों के लिए, महिलाओं के लिए, युवाओं के लिए कार्यक्रमों की शैली भिन्न होती है। ग्रामीणों और विशेषकर कृषकों के लिए लिखे गए कार्यक्रम में शब्द चयन, वाक्य प्रयोग बातचीत की सी शैली, आत्मीयता, स्पष्ट उच्चारण व वैज्ञानिक दृष्टि को भी सहज सरल शैली में प्रस्तुत करना चाहिए। दूसरी ओर युवाओं के लिए लिखे गए कार्यक्रम में मस्ती, जोश, उमंग का होना आवश्यक हैं वही उनके कैरियर के लिए कार्यक्रम तैयार किए जाने पर उसमें अधिकाधिक सूचनाओं का होना आवश्यक है।

विषय का चुनाव : लेखन कार्य मात्र कल्पना द्वारा संभव नहीं है। इसके लिए एक ओर अभिव्यक्ति के दबाव का अनुभव निरन्तर करना होता है वहीं दूसरी ओर समाजोपयोगी विषय का चुनाव भी उतना ही महत्वपूर्ण है। वार्ताएँ, परिचर्चाएँ, टिप्पणी आदि का उद्देश्य समाज के भीतर सजगता एवं जागरुकता का प्रसार करना है अतः विषय चयन करना भी अत्यन्त महत्वपूर्ण बिन्दु है। प्रत्येक बिन्दु और उसकी समस्या को केन्द्र में रखते हुए कभी पारिवारिक समस्याओं, कभी उच्च और निम्न वर्ग में बढ़ते अन्तर, आर्थिक बदलावों से मध्य वर्ग की बढ़ती समस्याएँ, 21वीं सदी में भी आतंकवाद का भय, साम्प्रदायिक दंगों के कारण जनता की अनकही पीड़ा का विस्तार आदि विषयों को यदि केन्द्र में रखा जाए तो विभिन्न विधाओं के लिए किया गया लेखन समसामयिक तो होगा ही, समाजोपयोगी भी हो सकेगा।

4. विषय प्रतिपादन

समसामयिक सामाजिक विषयों पर तैयार किए जाने वाले कार्यक्रमों में सबसे महत्वपूर्ण है- **परिचर्चा**।

परिचर्चा का प्रसारण मूलतया रेडियो एवं टीवी पर किया जाता है। परिचर्चा अर्थात- बातचीत या विचार-विमर्श के लिए आमंत्रित विद्वानों से विषय विशेष पर विमर्श। इस विचार-विमर्श के लिए विषय के विद्वानों, विशेषज्ञों को प्रतिभागियों के रूप में आमंत्रित किया जाता है, जिनकी उस विषय पर न केवल अधिकार हो बल्कि सहज, सरल भाषा में वे उसे अभिव्यक्ति भी प्रदान कर सकें।

यद्यपि वार्ता एवं साक्षात्कार से भी परिचर्चा के साम्य पर चर्चा की जाती है परन्तु वार्ता में मूलतः एक ही व्यक्ति अपने विचारों को अभिव्यक्ति देता है, साक्षात्कार में एक व्यक्ति विशेष से उसी के जीवन, जीवन शैली, अनुभव, विचार संबंधी प्रश्न किये जाते हैं जबकि परिचर्चा में किसी अन्य विषय (जो निजी जीवन से संबद्ध न हो) पर सभी विद्वानों की राय ली जाती है। विचार-विमर्श किया जाता है, सहमति-असहमति अभिव्यक्त की जाती है एवं उन सभी विशेषज्ञों के मध्य सामंजस्य कायम किया जाता है। सामंजस्य की स्थापना करना तथा विशेषज्ञों को एक निश्चित विषय की ओर लौटाना अत्यंत कठिन कार्य है। सभी विद्वान अपने मत पर दृढ़ होते हैं एवं सहज ही दूसरे के विचारों को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हाते। ऐसे में कुछ बिन्दुओं को आरम्भ में ही तय करके लिख लिया जाना चाहिए जिससे कहीं मतभेद होने पर विषय से ही जुड़े अन्य बिन्दुओं की ओर परिचर्चा का रुख मोड़ा जा सके।

परिचर्चा अधिकांशत सामाजिक विषयों से सम्बद्ध होती है अतः 'समाज पर प्रभाव' पर भी विमर्श होना स्वाभाविक माना जाता है। परिचर्चा एक उत्साहवर्धक माहौल की मांग करती है अतः आवश्यक है कि सभी विशेषज्ञ स्वयं को समान स्तर पर अनुभव कर सके। उच्चता बोध जितना खतरनाक है हीनता बोध उतना ही हानिकारक। विशेषज्ञ आत्ममुग्ध होकर निरन्तर स्वयं को विशिष्ट मानकर परिचर्चा को हानि पहुंचा सकता है। अतः सभी के मध्य एक संतुलन निर्माण का कार्य-गुरुतर कार्य करता है- सूत्रधार या संचालक।

रेडियो परिचर्चाः परिचर्चा मूलतः रेडियो के लिए प्रसारित होने वाला कार्यक्रम था परन्तु अब टीवी पर भी यह उतना ही लोकप्रिय है। रेडियो उच्चरित माध्यम है। रेडियो कार्यक्रमों में मुख्यतया

तीन तत्वों- शब्द, ध्वनि संगीत का विशेष योगदान होता है। शब्द रेडियो का प्राणतत्व है। उच्चरित ध्वनियों के माध्यम से ही श्रोता के मनोविज्ञान, रुचियों एवं जिज्ञासा को समझा और शांत किया जाता है।

रेडियो पर परिचर्चा की अवधि मूलतः 20 से 30 मिनट की होती है। ज्वलन्त, समसामयिक, शैक्षिक, राजनीतिक विषयों का चयन करके पूर्ण विचार गांभीर्य के साथ विषय के महत्व का प्रतिपादन किया जाता है। विशेष ध्यान रखने वाले बिन्दु प्रमुख हो सकते हैं-

क) विषय का चुनाव ऐसा हो जिससे-

1. बेहतर दुनिया के निर्माण की कल्पना संजोई जा सके।
2. समाज का ध्यान समस्या/विषय की ओर दिलाना आवश्यक हो।

ख) इसके लिए : (1) सूत्रधार को भी विषय की सही जानकारी होनी चाहिए।

(2) विषय के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक बिन्दुओं की पड़ताल करनी चाहिए।

(3) सामाजिक संरचना का विश्लेषण करते हुए विषय को समाज से जोड़कर प्रस्तुत करना चाहिए।

ग) उच्चारण स्पष्ट होना, वाक्य विन्यास छोटे एवं सारगर्भित होना, शब्दों पर नियंत्रण, शब्द के महत्व से परिचय, श्रोता के वर्ग एवं स्तर के अनुरूप भाषा का चयन- यद्यपि यह सभी नियम अत्यन्त सामान्य हैं परन्तु यह नियम रेडियो पर प्रसारित किसी भी परिचर्चा को सफल बनाने में सहायक होते हैं।

उदाहरण के लिए : किशोर बच्चों के लिए 'युववाणी' से परिचर्चा का आयोजन होता है। नारी

जागृति संबंधी अनेक कार्यक्रमों में वार्ता परिचर्चा का आयोजन रेडियो पर होता है। ग्रामीणों को जागरुक करने के लिए भी परिचर्चा आयोजित की जाती है जिससे किसान भाई विभिन्न फसलों के वैज्ञानिक दृष्टिकोण, बीज के प्रयोग, कौशल के विकास की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। यथा

संयोजक : किसान भाइयों और बहनों हम सभी निरन्तर अपनी परिचर्चा के दौरान आपसे भूमि को उपजाऊ बनाने तथा विभिन्न फसलों की बुआई-कटाई की चर्चा करते रहे हैं। आज हम इस कार्यक्रम में स्त्री की भूमिका पर विचार करेंगे,जी हां वही स्त्री- जो निरन्तर अपने श्रम से फसलें उगाने में सहायता करती है, बच्चों का लालन-पालन करती है। इस विषय पर परिचर्चा के लिए स्टूडियो में आमंत्रित हैं श्री क ख ग एवं श्री प भ ब। आपका बहुत बहुत स्वागत।

दोनों : धन्यवाद।

संयोजक : श्री क ख ग पहले में आपसे पूछना चाहूंगी कि आप कृषि क्षेत्र से स्त्री के संबंध को किस रूप में देखते हैं?

क ख ग : कृषि हो या हमारा ग्रामीण समाज- स्त्री की भूमिका के महत्व से इन दोनों क्षेत्रों में इंकार नहीं किया जा सकता। किसान के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने वाली स्त्री उसकी शक्ति है। भोजन बनाने, खेतों तक पहुंचाने में ही नहीं बल्कि बीज बोने, बैलों को पुचकार फिर से तैयार करने, कुंए से पानी निकालकर खेतों तक पहुँचाने में उसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। (उदाहरण : शीर्षक 'कृषि दर्शन' कार्यक्रम से विचार मौलिक)

श्री प भ ब : .....

कार्यक्रम के पश्चात अक्सर संगीत का रागिनी या मद्धम संगीत सुनाया जाता है जो परिचर्चा के सुखद अंत का भी सूचक है।

टीवी परिचर्चा : टीवी दृश्य-श्रव्य माध्यम है। दृश्य माध्यम की सबसे बड़ी शक्ति एवं सीमा है- प्रत्येक कार्य व्यापार पर दर्शक की नजर का होना। परिचर्चा का संचालन टीवी पर एक अत्यंत कठिन कार्य है जो निरन्तर सजग मस्तिष्क एवं शांत स्वभाव की मांग करता है। अनेक बार पैनल में आए विद्वजन एक दूसरे पर छींटाकशी भी कर देते हैं, अपना नियंत्रण खो देते हैं एवं दलगत राजनीति भी दिखाई देने लगती है। कई बार सूत्रधार (संचालक) पर भी टिप्पणी कर दी जाती है। ऐसे में परिचर्चा को फिर से सही 'ट्रैक' पर लाना, विद्वजनों को शांत करना व दर्शक के साथ भी तालमेल बनाए रखना आवश्यक होता है। ऐसी स्थिति अधिकांशतः चुनाव के समय में की जाने वाली परिचर्चाओं में दिखाई देती है, जहाँ प्रत्येक दल के नेता स्वयं को दूसरे दल से श्रेष्ठ दर्शाने की कोशिश करते हैं।

टीवी परिचर्चा मुख्यतया दो रूपों में प्रसारित की जाती है- 1) विद्वजनों के पैनल को आमंत्रण विषय पर विचार-विमर्श।

2) विद्वजनों के पैनल के साथ-साथ जनता के एक समूह की भी भागीदारी ताकि वे भी अपने मन में उठ रहे प्रश्नों को पूछ सकें। कई बार संबंधित विषय पर दर्शकों की भी राय पूछी जाती है।

प्रो. हरिमोहन ने परिचर्चा पर विचार करते हुए कुछ प्रमुख बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक माना है। (सूचना प्रोद्यौगिकी और जन माध्यम) ।

विषय का चयन : विषय ऐसा हो जिसमें दर्शक भी भागीदारी कर सके एवं जागरुक हो सके। जिस विषय का भी चुनाव किया जाए उसे रोचक अंदाज में प्रस्तुत किया जाए। शिक्षा, समाज, राजनीति, प्रेम, विवाह, युद्ध सभी परिचर्चा के विषय बन सकते हैं परन्तु उनकी समसामयिक व्याख्या का होना अत्यंत आवश्यक है- यथा-

1) जम्मू-कश्मीर की बिगड़ती स्थिति के लिए जिम्मेदारी कौन लेगा?

2) 21वीं सदी और बढ़ते विवाहेतर संबंध

3) परमाणु डील या नो डील

4) बढ़ती महँगाई- आम आदमी किस सरकार से दरख्वासत करे?

सदस्यों (**प्रतिभागियों**) **का चयन** : परिचर्चा को सरल बनाने के लिए विषय के अधिकारी विद्वजनों को आमंत्रित किया जाना चाहिए। विषय विशेष के अनुरूप अलग-अलग वर्गों, क्षेत्रों से सदस्यों को आमंत्रित किया जा सकता है। यदि कृषि संबंधी परिचर्चा का आयोजन है तो पूसा इंस्टीट्यूट से विद्वजनों, कृषि अनुसंधान परिषद से विशेषज्ञों को बुलाया जा सकता है। 'हिन्दी की बदलती स्थिति' पर परिचर्चा करते समय दिल्ली विश्वविद्यालय के अध्यक्ष, पत्रकारिता में

स्थापित हिन्दी संपादक, एक विद्यार्थी व रंगगंच के विशेषज्ञ को निमंत्रण दिया जा सकता है- रोजगार की संभावनाओं को- अध्ययन अध्यापन, के अतिरिक्त रंगमंच, मीडिया, अनुवाद, भाषा विज्ञान से जोड़कर परिचर्चा की जा सकती है।

संचालक एवं लेखन कार्य : प्रत्येक व्यक्ति संचालक की भूमिका का निर्वहण नहीं कर सकता। संचालक वही हो सकता है जो स्वनियंत्रण एवं संतुलन बनाए रखने के गुरुतर दायित्व का पालन कर सके। लेखन कार्य का सबसे महत्वपूर्ण संबंध संचालक के साथ होता है। समस्त प्रश्नों की रूपरेखा उसके समक्ष होनी चाहिए जिसे वह पैनल के सदस्यों के समक्ष एक-एक करके क्रम से प्रस्तुत करता है। कई बार उत्तर में से नए प्रश्न की संभावना तैयार हो जाती है। ऐसे में संचालक को तत्काल प्रश्न तैयार करने के लिए भी चौकस रहना होता है। यथा- **'हिन्दी एवं रोजगार की संभावनाएं'**- परिचर्चा में निम्न प्रश्नों को परिचर्चा से पूर्व ही लिखित रूप में तैयार किया जाना चाहिए-

1. हिन्दी भाषा के भविष्य को लेकर अनेक आशंकाएं व्यक्त की जाती हैं। आप हिन्दी के भविष्य को किस रूप में देखते हैं?
2. मीडिया का अधिकांश कार्य हिन्दी में ही होता दिखता है। क्या हिन्दी के विद्यार्थी के लिए यह मार्ग सरल है?
3. प्रत्येक क्षेत्र विषय की विशेषज्ञता की मांग करता है। ऐसे में अनुवाद क्षेत्र में जाने के लिए हिन्दी विद्यार्थी को किन-किन अन्य भाषाओं का प्रशिक्षण प्राप्त करना चाहिए?
4. साहित्य लेखन के भविष्य को आप कितना चुनौतीपूर्ण मानते है और क्यों?

भाषा : परिचर्चा संबंधी लेखन कार्य के लिए-

1) विषय संबंधी सामान्य रूपरेखा तैयार कर लेनी चाहिए।

2) पक्ष-विपक्ष में बात करते हुए तर्कपूर्ण एवं प्रवाहपूर्ण भाषा का प्रयोग किया जाए।

3) भाषा सहज, सरल हो साथ ही आत्मीय भी।

4) क्रोध, आवेश की प्रवृत्ति न हो, समाजोपयोगी, एवं विषय संबंधी शब्दों का प्रयोग किया जाए।

5) बेहतर वक्ता को बेहतर श्रोता भी माना जाता है। अतः ध्यान से सारी बातें सुनकर अत्यंत सहज शैली में दूसरे वक्ता को बात आगे बढ़ानी चाहिए।

6) जनशिक्षा, जागरुकता, समाज की प्रगति में सहायता परिचर्चा के उद्देश्य बिन्दु हैं अतः भाषा भी इन उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक होनी चाहिए।

7) किसी भी प्रकार के पूर्वाग्रह, निजी टिप्पणी से बचना चाहिए।

8) अंत में संयोजक को सारी बातों का सार बताते हुए निष्कर्ष देना होता है। इसके लिए प्रवाहपूर्ण (परन्तु सजग होकर) शब्दों का चयन करना चाहिए ताकि भाषिक समस्या के कारण कहीं अर्थ का

अनर्थ न हो जाए।

टिप्पणी :

हिन्दी साहित्य कोश में 'टिप्पणी' शब्द पर विचार करते हुए कहा गया है- क) 1 संक्षिप्त टीका, विषम स्थलों का व्याख्यान

2.टीका की टीका

ख) हिन्दी में टिप्पणी शब्द अंग्रेजी के 'नोट' शब्द का अर्थ देता है।

ग) इसके पर्याय टीका, विवृन्ति, व्याख्या इत्यादि शब्द है।

हिन्दी में अंग्रेजी के NOTE का पर्याय है- टिप्पणी। इस अर्थ में इसका प्रयोग प्रशासनिक कार्यों के लिए किया जाता है। प्रशासनिक कार्यों के दौरान अनेक बार कर्मचारियों/अधीनस्थों को आदेश दिया जाता है- कई बार यह आदेश विस्तृत भी होते हैं तो कभी संक्षिप्त भी। संक्षिप्त आदेश कार्य के आरम्भ अथवा निस्तारण से सम्बद्ध होते हैं जबकि विस्तृत टिप्पणी सुझाव, जानकारी देने के लिए लिखी जाती है। यह सुझाव अथवा जानकारी व्यक्ति विशेष के व्यवहार, आचरण से सम्बद्ध हो सकती है और विषय विशेष से भी। किसी संस्था की जानकारी भी हो सकती है अथवा किसी व्यक्ति के बेहतर आचरण, संस्थान के प्रति दायित्व बोध की सूचना सम्बन्धी भी। इस प्रकार टिप्पणी प्रशासनिक कार्यों के अन्तर्गत दो रूपों में प्रस्तुत की जाती है-

क) संक्षिप्त प्रशासनिक टिप्पणी

ख) विस्तृत जानकारी संबंधी टिप्पणियाँ

इसके अतिरिक्त टिप्पणी शब्द का प्रयोग समसामयिक विषयों पर विभिन्न बिन्दुओं के आधार पर एक टिप्पणी तैयार करने के लिए भी किया जाता है। व्यक्ति (लेखक) द्वारा अपने मन में किसी विषय पर चल रहे मंथन को विभिन्न बिन्दुओं में बांटकर उस विषय पर संक्षेप में अपने विचार प्रस्तुत करने चाहिए। प्रिण्ट मीडिया में टिप्पणी के इस स्वरूप का अधिकाधिक उपयोग किया जाता है।

सरकारी कामकाज के संदर्भ में विचार करने पर ज्ञात होगा कि टिप्पणी सदैव अधीनस्थ कर्मचारी द्वारा लिखी जाती है और संबंधित अधिकारी द्वारा टिप्पणी को पढ़कर निर्णय लिया जाता है.

भारत सरकार (कार्यालयी पद्धति) द्वार टिप्पणी को इस रूप में परिभाषित किया गया है- टिप्पणियाँ वे बातें हैं जो विचाराधीन कागजों के बारे में इसलिए लिखी जाती हैं कि मामले को निपटाने में सुविधा हो। (Notes are the written remarks recorded on a paper under consideration to facilitate its disposal) (स्रोतः प्रयोजनमूलक हिन्दी : प्रक्रिया और स्वरूप (पुस्तक) ' कैलाशचन्द्र भाटिया पृ. 63)

टिप्पणी : **लेखन** दो-तीन रूपों में किया जा सकता है-

(क) किसी विषय पर नवीन ड्राफ्ट तैयार करना
(ख) पुराने ड्राफ्ट को संक्षिप्त करना
(ग) नवीन ड्राफ्ट का पुनः संक्षिप्तीकरण करना
टिप्पणी में संदर्भ का उल्लेख आवश्यक है। संदर्भ का अर्थ है- पूर्व पत्रों का सार, पहले लिए गए निर्णय, निर्णय का विस्तार से उल्लेख जिससे भविष्य में टिप्पणी के इतिहास की जानकारी के अनुसार निर्णय लिया जा सके

सरकारी काम-काज में टिप्पणी लेखन का क्रम कुछ इस प्रकार से है-
सहायक द्वारा प्रथम टिप्पणी लेखन व अधीक्षक को सुझाव
अधीक्षक द्वारा अपने मत का उल्लेख तथा अपर सचिव को टिप्पणी प्रेषण
अपर सचिव द्वारा अपने विचार का उल्लेख तथा उप सचिव फिर संयुक्त सचिव को प्रेषण
यदि आवश्यक हो तो मंत्री अथवा प्रधानमंत्री तक टिप्पणी का प्रेषण (परन्तु ऐसा सदैव नहीं होता।) मामला गंभीर होने पर ही इतने उच्च स्तर तक टिप्पणी प्रेषित की जाती है। 'विनोद गोदरे' ने अपनी पुस्तक 'प्रयोजनमूलक हिन्दी' में टिप्पणी के प्रकार की चर्चा करते हुए इसके तीन रूप माने हैं-

1. **नेमी टिप्पणी** : यह प्रशासनिक टिप्पणी भी कहलाती है। संक्षिप्त रूप में आदेश या निर्देश के रूप में इनका उपयोग किया जाता है। कैलाशचन्द्र भटिया ने राजभाषा विभाग के साथ कार्य करते हुए नेमी टिप्पणियाँ तैयार की हैं। उदाहरण उन्हीं की पुस्तक से लिए गए हैं जो इस प्रकार

हैं- No need on comment - टिप्पणी की आवश्यकता नहीं है। Seen and spoken - देख लिया और बात कर ली। For onwards transmisson - आगे भेजने के लिए

2. **स्वतः स्पष्ट टिप्पणी** : जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है इसमें दी गई सूचना स्वयं में पूर्ण होती है। इसे अधिकारी द्वारा एवं सहायक द्वारा भी लिखा जा सकता है। अनेक बार किसी नये अधिकारी के आने पर इन टिप्पणियों की आवश्यकता होती है जिससे नए अधिकारी को किसी केस का पूर्ण इतिहास ज्ञात हो सके।

3. **आवती** (प्राप्ति : आई हुई डाक) के संबंध में टिप्पणी : कार्यालय में चल रही स्थिति को जानने के लिए इस टिप्पणी का प्रयोग किया जाता है। कार्यालय/विभाग किसी विषय पर किस प्रकार का निर्णय ले सकता है; इसका उल्लेख भी टिप्पणी में किया जाता है। इसमें प्राप्त डाक का क्रमांक, संबंधित नियमों की जानकारी, डाक में आए पत्र की वस्तु स्थिति का संपूर्ण उल्लेख कर्मचारी द्वारा किया जाता है।

टिप्पणी की भाषा :

टिप्पणी में कम शब्दों में अधिक बात कहना आवश्यक है,अतः भाषा के अलंकृत, मुहावरेदार रूप का प्रयोग इसमें नहीं किया जाता। तथ्यात्मकता टिप्पणी की शक्ति है अतः तथ्यों का उल्लेख भी सरल, स्पष्ट, सुसंगत भाषा में होना चाहिए। टिप्पणी में व्यक्तिगत बातों के उल्लेख की गुंजाइश नहीं होती ,अतः अर्थ में भ्रम पैदा करने वाले शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। अन्यथा चाहे-अनचाहे टिप्पणी भ्रमात्मक भी हो सकती है और विरोधी भी। टिप्पणी सदैव अन्य पुरुष में लिखी जाती है, अतः टिप्पणी लेखन के नियमों का पालन करते हुए बोधगम्य शब्दों का प्रयोग करना चाहिए। टिप्पणीकार को पक्षपात रहित होना चाहिए। भाषा के स्तर पर इस वृत्ति का निर्वाह अत्यन्त आवश्यक है।

टिप्पणी का नमूना :

लेखा अनुभाग के लिपिक श्री..... का अर्जित अवकाश के लिए पत्र।

मुख्य सचिव को संबोधित : क्रम संख्या.....

दिल्ली (स्थान)

पत्र संख्या : ..... दिनांक .....

1. लेखा अनुभाग के लिपिक श्री ..... ने एक माह के अर्जित अवकाश के लिए लिए पत्र (प्रार्थना पत्र) लिखा है।

2. इसके लिए उन्होंने आगामी माह में अपने विवाह की तारीख निश्चित होने का कारण

बताया है।

3. प्रमाण के रूप में अपने विवाह का निमंत्रण पत्र साथ-साथ में लगाया है।

4. अभी उनके पास 100 दिनों का अर्जित अवकाश जमा है। अत': उन्हें अवकाश दिया जा सकता है।

5. कार्यालय में अभी तीन अन्य लिपिक भी अवकाश पर हैं फरवरी माह होने के कारण कार्य की अधिकता भी है।

6. इस दृष्टि से अवकाश को घटाकर 15 दिन भी किया जा सकता है।

टिप्पणीकार

(हस्ताक्षर)

अवर सचिव

दिनांक :

(उदाहरण : मौलिक सहायता :)

1. प्रयोजनमूलक (पुस्तक) हिन्दी विनोद गोदर

2. प्रयोजनमूलक हिन्दी के आधुनिक आयाम (पुस्तक)

महेन्द्र सिंह राणा

वार्ता

वार्ता का प्रसारण मुख्यतया रेडियो पर किया जाता है। 'वार्ता' रेडियो का अत्यंत सफल कार्यक्रम है। वार्ता का सामान्य अर्थ है- बातचीत। बातचीत प्रायः दो व्यक्तियों के मध्य होने वाला वार्तालाप है, जहाँ एक व्यक्ति श्रोता की भूमिका निभाता है तो दूसरा वक्ता की। निरन्तर चलते वार्तालाप में यह भूमिकाएँ परस्पर परिवर्तित होती रहती हैं-

श्रोता<---------वक्ता

वक्ता--------->श्रोता

परन्तु वार्ता में वक्ता एवं श्रोता की परस्पर बातचीत नहीं होती बल्कि वक्ता एवं श्रोता की मानसिक परिकल्पना करके उनके संवादों को अनुभूत करते हुए एक ही व्यक्ति को वक्ता एवं श्रोता की भूमिका का परस्पर निर्वाह करना होता है। यही तालमेल, विचार एवं भावाभिव्यक्ति का

गुणात्मक संबंध वार्ता को सफल बनाता है।

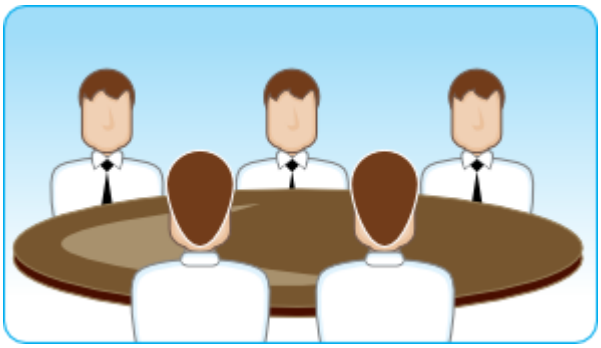

वार्ता लेखन : वार्ता लेखन सरल कार्य नहीं माना जा सकता। अक्सर समाचार पत्र लेखक वार्ता लेखन (रेडियो) करते समय माध्यम की भिन्नता को ध्यान में नहीं रख पाते। पुस्तकीय लेखन एवं उच्चरित माध्यम के लिए लेखन में स्पष्ट अंतर होता है। पुस्तक में अर्थ ग्रहण न किए जाने पर पाठक पुनः उस विषय को गंभीरता से पढ़ एवं समझ सकता है। शब्दों का अर्थ कोश में तलाश सकता है परन्तु वार्ता न केवल श्रव्य माध्यम है बल्कि संवादात्मक शैली में ढला हुआ एक ऐसा वार्तालाप है जो एक ही व्यक्ति द्वारा श्रोताओं के मानसिक स्तर, उनकी समझ एवं वक्ता के दायित्व बोध को ध्यान में रखते हुए किया जाता है। उदाहरण के लिए यदि हमें 'साहित्य एवं समाज' विषय पर वार्ता लेखन करना हो तो इसके दो रूप हो सकते हैं-

(**एक**) साहित्य एवं समाज दोनों परस्पर संबंधित हैं। समाज का ही प्रभाव साहित्य पर दिखाई देता है और साहित्य ही समाज को दिशा प्रदान करता है। साहित्य राष्ट्र के सांस्कृतिक, वैचारिक, सामाजिक समुत्थान की सीढ़ी है। लेखकों का यह दायित्व है कि वह सजग और सचेत होकर अपनी रचना को बौद्धिक दृष्टि से विश्लेषित करें। यदि रचना में जन समाज को जागृत करने, उद्वेलित करने सशक्त बनाने के तत्व मौजूद नहीं हैं तो ऐसा साहित्य त्याज्य है।

(**दूसरा**) दोस्तों हम सभी जानते और मानते हैं कि साहित्य का प्रभाव समाज पर अवश्य होता है। भारतेन्दु ने जब 'निज भाषा उन्नति अहै' कहकर अपनी भाषा का सम्मान बढ़ाया तब हजारों लोगों ने उनकी इस पंक्ति को दोहराकर उनका साथ दिया। राष्ट्र कवि दिनकर ने जब 'परशुराम' जी का आह्वान किया तो हम सभी भारत -चीन युद्ध के समय सजग हो गए। क्या आप जानते हैं कि इस समय हजारों स्त्री-पुरुषों ने अपने गहने, कपड़े दान कर दिए ताकि राष्ट्र की रक्षा हो सके। साहित्य हमें इसी प्रकार सदैव सजग बनाता है।

स्पष्ट है कि दूसरा उदाहरण वार्ता को प्रभावी ढंग से उभारने में सक्षम है। श्रोता एवं वक्ता के पारस्परिक संबंधों का निर्वाह करने वाली वार्ता ही रेडियो वार्ता कहलाती है।

लिखित स्क्रिप्ट की आवश्यकता

कि तनी ?:

इस विषय पर विद्वानों के दो वर्ग मिलते हैं- पहले वर्ग के अनुसार आलेख का लिखित होना अनिवार्य है ,क्योंकि लिखित रूप होने के कारण न केवल व्यक्ति में आत्मविश्वास का संचार होता है बल्कि श्रोता भी वार्ता की अन्तर्धारा को ग्रहण करने में समर्थ होता है। आलेख लिखित होने से प्रसारण भी सफल होता हैं, अनेक बार किसी विशेष समय पर किसी विशेष मनःस्थिति में होने के कारण वार्ताकार शब्दों को गड्मड्ड कर सकता है, वाक्य विन्यास भूल सकता है, किसी अन्य परिस्थिति को अपने ऊपर हावी होते हुए महसूस करता है। ऐसे में लिखित स्क्रिप्ट होने से वार्ताकार स्वनियंत्रण बनाए रख सकता है, आलेख को पढ़कर-संवादात्मक शैली में अपनी बात को प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त कर सकता है।

विद्वानों का दूसरा वर्ग मानता है कि लिखित स्क्रिप्ट न केवल वार्ताकार की अभिव्यक्ति को सीमित करती है बल्कि उसकी संभावनाओं को भी कुंद करती है। लिखित स्क्रिप्ट होने के कारण वार्ताकार अपने स्वाभाविक रूप में नहीं रह पाता। डॉ. रमेश चन्द्र त्रिपाठी श्रीमती रूजबेल्ट को एक ऐसी सफल वार्ताकार मानते हैं जो बिना किसी आलेख(स्क्रिप्ट) के सफल वार्ता प्रस्तुत करती है। (संदर्भ : पुस्तक- मीडिया लेखन- डॉ. रमेश चन्द्र त्रिपाठी, डॉ. पवन अग्रवाल पृष्ठ

संख्या 44-45)

परन्तु यह भी सत्य है कि सभी वार्ताकार इतने सशक्त नहीं होते कि वे अपनी भाषा एवं शैली को साधिकार विषय से जोड़कर माइक के समक्ष प्रस्तुत कर सकें। अतः लिखित स्क्रिप्ट एक आवश्यकता बन जाती है।

विषय का चुनाव किसके लिए?

विषय का चुनाव करते हुए सर्वप्रथम वार्ताकार को यह तय करना आवश्यक है कि इसका श्रोता कौन होगा? मात्र वही वर्ग जिससे विषय का संबंध है? या अन्य श्रोता भी? इस पर गंभीरता से विचार करके यदि वार्ता लिखी जाए तो उसके सफल होने की उम्मीद बढ़ जाती है। मान लीजिए 'मुद्रास्फीति' विषय पर वार्ता की रचना करनी है तो वार्ताकार को यह ध्यान रखना होगा कि इस विषय पर आँकड़े प्रस्तुत करना, पिछले वर्षों से तुलना एवं अर्थशास्त्रियों के इस विषय पर विचार को प्रस्तुत न करके सहज सरल व रोचक अंदाज में महँगाई से मुद्रास्फीति के संबंध एवं जनता पर बढ़ते बोझ का वर्णन वार्ता के अंतर्गत किया जाए जिससे सभी श्रोताओं की रुचि विषय में बनी रहे।

भाषा :

रेडियो वार्ता संवादात्मक शैली में प्रस्तुत की जाती है। संवाद सहज, सरल, रोचक तो हों ही, बातचीत की शैली में भी प्रस्तुत किए जाए; इस पर ध्यान देना आवश्यक है। यद्यपि वार्ता भी साहित्यिक विधा मानी जाती है परन्तु साहित्यिक भाषा, मुहावरेदार शैली का प्रयोगवार्ता को बोझिल बना देता है। सामान्य शब्द भी यदि विषय के अंदाज एवं मिजाज के अनुरूप लिखे जाएँ तो वह भी वार्ता को प्रभावी बना देते हैं।

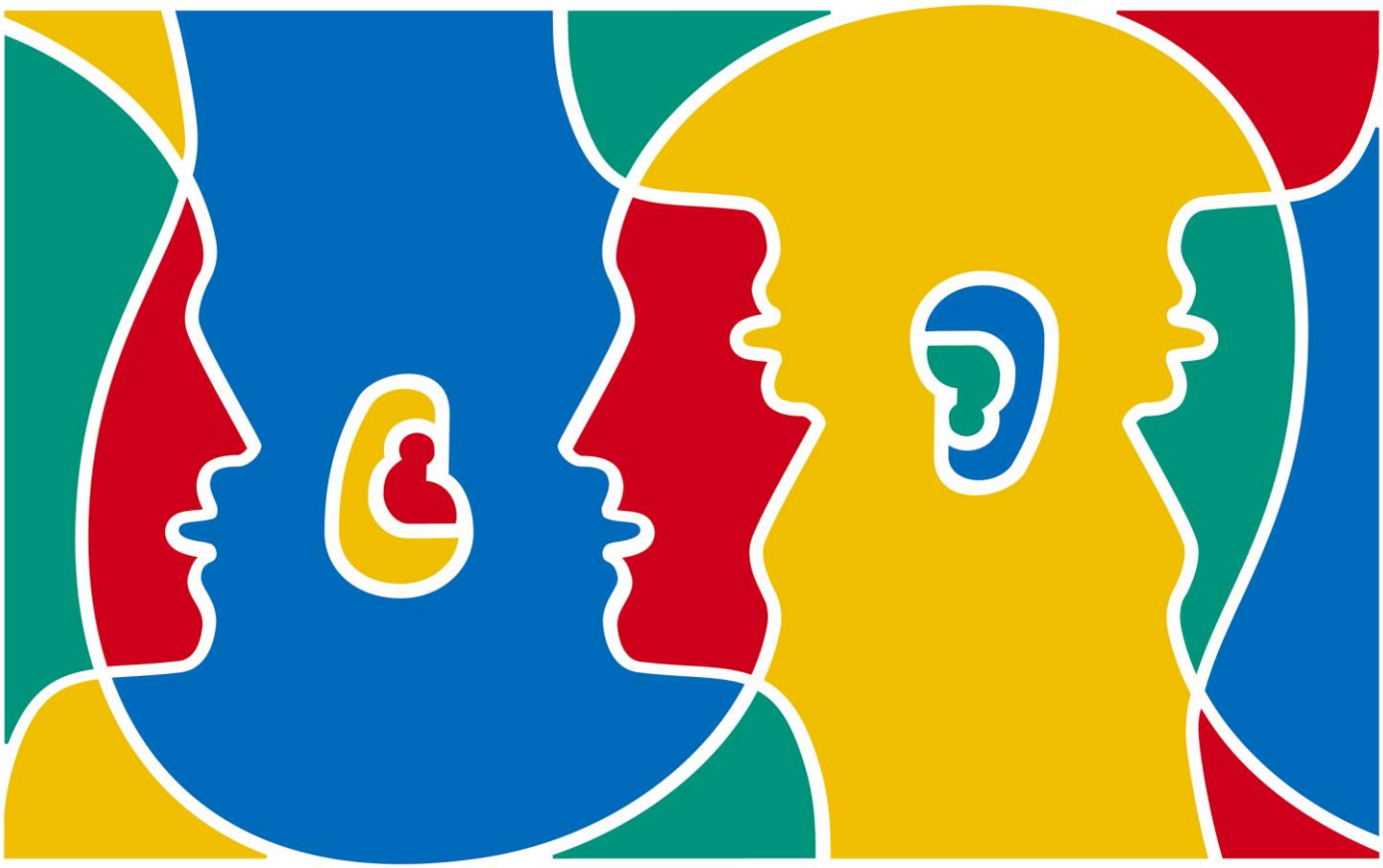

वार्ता श्रव्य विधा है अतः श्रोता के पास समझने के लिए बहुत अधिक समय नहीं होता न तो वह पृष्ठ पलट सकता है न ही क्लिष्ट शब्दों को 'नोट' करके रखता है कि समय होने पर वह विस्तार से उसे पढ़कर समझ लेगा। श्रोता तो सुनते ही या तो अर्थग्रहण करता है या रेडियो बन्द कर देता है। अतः हमें निम्न बातों को अवश्य रखना चाहिए-

1. वार्ताकार को विषय का पर्याप्त ज्ञान हो व उसके समक्ष विषय से सम्बद्ध पूर्ण सामग्री उपलब्ध हो।
2. वार्ता में तथ्यों की अधिकता, आँकड़ों का अधिकाधिक उपयोग न हो।
3. विषय पर अधिकार हो तथा विचारों को क्रमबद्ध ढंग से प्रस्तुत किया जाए।
4. वार्ता प्रस्तुतीकरण के लिए रूपरेखा का निर्माण अपने श्रोताओं में विचार जगाने के लिए अत्यन्त आवश्यक है।
5. वाक्य विन्यास ठीक हो अर्थात छोटे-छोटे वाक्यों में बात को स्पष्ट किया जाए।
6. वाचन शुद्ध हो तथा प्रस्तुकीय भाषा न होकर प्रत्यक्ष संवादात्मक शैली का प्रयोग किया जाए।
7. वार्ताकार की कुशलता, रेडियो माध्यम की समझ एवं भाषा पर अधिकार वार्ता को सफल

बनाते हैं।

8. वार्ता के तीन प्रमुख भाग माने जाते हैं- आरम्भ, मध्य, एवं, अंत। आरम्भ का रोचक एवं जिज्ञासा जगाने वाला होना आवश्यक है ताकि श्रोता की रुचि विषय के संबंध में बढ़े और वह उसे आगे सुनने के लिए स्वयं प्रेरित हो सके। मध्य में मूल विषय की चर्चा करके अंत भी सहज तरीके से लाया जाना चाहिए। तेजी से बात करके अपनी बात समाप्त कर देना श्रोता के लिए 'शोक' के समान होगा अतः हल्के फुल्के अंदाज में एक दो वाक्य कहते हुए वार्ता का समापन किया जा सकता है -- "अच्छा तो दोस्तों अब हमें दीजिए इजाजत। वैसे तो आपसे लगातार बात करने का अपना ही मजा है पर समय के बंधन में हम सभी को बंधना ही पड़ता है। आशा है आपको विषय के संबंध में जानकारी रोचक लगी होगी और आपका ज्ञानवर्द्धन भी हुआ होगा। इसी के साथ .... शब्बा खैर..... गुड नाइट..... नमस्कार।'

समय सीमा :

रेडियो/टीवी के कार्यक्रमों की सीमा रेखा तय होती है। उसी समय-सीमा के अंतर्गत कार्यक्रम के पूर्ण विषय की रूपरेखा बनाकर उसे श्रोताओं के समक्ष प्रस्तुत करना अत्यन्त चुनौतीपूर्ण कार्य है। वार्ता सामान्यतः आठ से दस मिनट की होती है। 'दस मिनट' सुनने में जिनता कम समय लगता है, प्रस्तुतीकरण के लिहाज से यह उतना ही अधिक है। इस समय सीमा के लिए लिखे गए आलेख को पहले पढ़कर देख लेना चाहिए। यह भी न हो कि आलेख दस मिनट से पूर्व ही समाप्त हो जाए और वार्ताकार के पास कुछ कहने के लिए न बचे। यह भी न हो कि 'समापन' से पूर्व समय ही समाप्त हो जाए और एक बेहतर वार्ता निराशाजनक अंत की ओर बढ़ने के लिए मजबूर हो जाए।

यह भी तय करना आवश्यक है कि इस समयावधि में कितनी बातें वार्ता में समाहित की जा सकती हैं। यदि पांच प्रमुख बिन्दुओं की विस्तार से चर्चा की जा सकती है तो पाँच ही बिन्दु लिए जाएँ, उससे अधिक नहीं। अधिकाधिक कहने की इच्छा कई बार किसी भी बिन्दु को स्पष्ट नहीं कर पाती। सही ढंग से प्रस्तुतीकरण का एक ही मूल मंत्र है- सुगठित बातचीत और सही चुनाव। मान लीजिए मैथिलीशरण गुप्त की कृति 'पंचवटी' पर एक वार्ता का आयोजन किया जाए तो सर्वप्रथम समय सीमा को ध्यान में रखते हुए उसके महत्वपूर्ण बिन्दुओं का चुनाव करना होगा जिससे श्रोता को कृतित्व का मूलोद्देश्य ज्ञात हो सकेः

(क) लक्ष्मण के चरित्र की स्थापना

(ख) उपेक्षित चरित्रों का नवीन दृष्टि से मूल्यांकन

(ग) प्रकृति के प्रति प्रेम जगाना

(घ) असत्य/अन्याय पर सत्य/न्याय की विजय

उदाहरणों से पुष्टि : (अनौपचारिक शैली) कोई भी वार्ता औपचारिक अंदाज से प्रस्तुत नहीं की जा

सकती। आरम्भ में ही आत्मीयता का पुट वार्ता को न केवल सफल बनाता है बल्कि श्रोताओं का उससे जुड़ाव भी हो जाता है। यद्यपि वार्ताएँ विशेषज्ञों से लिखवाई जाती हैं परन्तु वार्ता में विशेषज्ञता का पुट उसे नीरस कर देता है। 'चिकित्सा पद्धति' की तकनीकी शब्दावली- 'चिकित्सक और हम' नामक वार्ता को बोझिल बनाएगी जबकि चिकित्सक और हमारा (जनता) आत्मीय संबंध कैसे बनें- इस विषय पर चर्चा श्रोताओं के भीतर बैठे अनजाने भय को कम करने में सहायक होगा। श्रोता न तो विषय का जानकार है न ही गूढ़ शब्दावली की इच्छा रखता है अतः उसकी भावनाओं को ध्यान में रखते हुए सामान्य एवं आत्मीय स्तर की वार्ता का निर्माण करना चाहिए।

उदाहरण देकर 'वार्ता' की पुष्टि करने से श्रोता का वार्ता पर विश्वास निर्मित होता है। मान लीजिए 'जयपुर-अजमेर यात्रा' पर वार्ता निर्मित करनी है तो ख्वाजा की दरगाह, अजमेर का किला, पैलेस, नाहरगढ़ का किला, जयपुर के खूबसूरत स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एंड जयपुर का जिक्र उसमें व्यक्तिगत अनुभवों के रूप में समाहित किया जाए। अजमेर के किले पर फहराते पचरंगे 'सवा झण्डे' की जानकारी शामिल की जाए तो श्रोता की जानकारी भी वर्द्धित होगी एवं वार्ता का आरम्भ से अन्त तक सुनने की इच्छा भी जागृत होगी।

श्रोता के प्रश्नों की तलाश करके उत्तरों पर चर्चा :

वार्ता प्रत्यक्ष संवाद नहीं है पर संवादात्मकता की प्रवृत्ति का त्याग नहीं कर सकती। श्रोता वक्ता के मानस-संबंध के आधार पर इसका निर्माण होता है। अतः आवश्यक है कि वार्ता लिखते समय श्रोता के मनमें जागृत प्रश्नों को वार्ता में स्थान दिया जाए यथाः-

अब आप सोच रहे होंगे कि झण्डा तो तिरंगा ही होता है, तो फिर (उपर्युक्त वार्ता में) पचरंगा झण्डा क्यों? आइए हम बताते हैं इसकी रोचक कहानी और इसका रहस्य।

इसी प्रकार आप सोचते होंगे कि प्रत्येक देश का जब एक ही झण्डा होता है तो आरमेर के किले में 'सवा झण्डे' की प्रथा क्यों?

ऐसे प्रश्न लगातार श्रोता की जिज्ञासा बढ़ाते भी हैं और उत्तर के द्वारा उस जिज्ञासा का शमन भी किया जाता है।

सिद्धनाथ कुमार जी ने रेडियो वार्ता पर चर्चा करते हुए प्रो. वर्नन के प्रमुख निष्कर्षों का वर्णन किया है जो इस प्रकार हैं-

1. वार्ता की बोधगम्यता के लिए विषय का रोचक होना आवश्यक
2. वार्ताओं में आधे दर्जन से कम बातों का उल्लेख ताकि समझने में समस्या न हो।
3. पुस्तकीय गद्य शैली की अपेक्षा सहज व सजीव शैली अनिवार्य
4. भाव मात्र विचारों को दृष्टतान्तों से समझाना आवश्यक। दृष्टान्तों का मूल विचारों से

सम्बन्ध होना चाहिए।

5. विचारों का विकास तर्क संगत रीति से हो।
6. साहित्यिक शब्दावली का प्रयोग कम।
7. संयुक्त एवं मिश्र वाक्यों से पूर्ण लम्बे वाक्य न हों।
8. बोलने की गति तेज न हो।

संवाद

संवाद एक अत्यन्त व्यापक शब्द है जिसका प्रयोग विभिन्न विधाओं की रचना के लिए किया जाता है। टीवी एवं रेडियो पर प्रसारित अधिकांश विधाएँ (कार्यक्रम) संवादात्मक रूप में लिखी गई हैं। प्रस्तुतीकरण में श्रोताओं की भागीदारी कार्यक्रम को सफल बनाने में सहायक मानी जाती है। संवाद विभिन्न रूपों में किया जा सकता है यथा- 1. भेंटवार्ता के दौरान प्रश्नकर्ता एवं व्यक्ति विशेष के मध्य होने वाला संवाद।

2. फोन-इन कार्यक्रमों में संगीत कार्यक्रमों में श्रोताओं की फरमाइश।
3. विषय विशेष/व्यक्तिगत समस्याओं से संबंधित कार्यक्रमों में श्रोताओं-दर्शकों की भागीदारी।

4.आजकल प्रत्येक चैनलों पर प्रस्तुत होने वाले ज्योतिष संबंधी कार्यक्रमों में दर्शकों से संवाद।

5. कोई विशेष नाटकीय प्रस्तुति।
6. किसी ज्वलंत विषय पर रेडियो पर विभिन्न परिकल्पित पात्रों के मध्य होने वाला संवाद।

संवाद के इन सभी रूपों की प्रकृति भिन्न-भिन्न हो सकती है।

क) भेंटवार्ता के मध्य संवाद :

भेंटवार्ता एक ऐसा संवाद है ,जो परस्पर विश्वास एवं सौहार्द के वातावरण में ही पनपता एवं विकसित होता है। चूंकि इसमें किसी निश्चित विषय को तय करके बातचीत संभव नहीं है, अतः

व्यक्ति विशेष के बारे में प्राप्त जानकारी ही संवाद को सही दिशा की ओर प्रेरित करती है। यह एक ऐसा संवाद है कि जिसमें व्यक्ति के व्यक्तित्व और कृतित्व की जितनी सूक्ष्म जानकारी प्रश्नकर्ता को होगी उतना ही बेहतर वातावरण निर्मित हो सकेगा एवं अनौपचारिक वातावरण में सहज संवाद की स्थिति बन सकेगी। श्री नन्द किशोर गिरवा एक साक्षात्कार के दौरान विकसित हुए संवाद की जानकारी देते हैं- **पूरे सम्मान के साथ उनका अभिवादन करने और भेंटवार्ता के लिए कुछ क्षण निकालने के लिए धन्यवाद देने के बाद मैंने स्व. पी. बी. मुखर्जी के बारे में बातचीत आरम्भ की।**

वे (श्री सत्य साची मुखर्जी) बोले- ओह, माय ब्रदर, ही वॉज ग्रेट। इट सीम्स यू नो हिज न्यूज। बस अब तो हम दोनों भी रास बैठ गई। श्री मुखर्जी थोड़ उठे और सोफे के पीछे पीठ लगाकर आराम से बैठ गए तथा बातचीत में पूरी रुचि लेते हुए वक्त को भूल गए। दोनों के लिए चाय मँगाई। अपनी पत्नी से मेरा परिचय कराया जो शायद यह बताने आई थीं कि जाने का वक्त हो चुका है। साक्षात्कार जब खत्म हुआ तो सात बज चुके थे। उठकर हाथ मिलाते हुए बोले-डू मीट मी अगेन' (पृ. 40-41)

आजकल अक्सर यह दिखाई देता है कि भेंटवार्ता में प्रश्नकर्ता अतिथि पर हावी होने का प्रयास करने लगता है। इस संवाद में निम्न बिन्दुओं का ध्यान रखना आवश्यक है-

1. भेंटकर्ता विषय की पूरी जानकारी प्राप्त करके ही साक्षात्कार संबंधी संवाद आरम्भ करे और अधिकाधिक बोलने का अवसर विशिष्ट व्यक्ति को प्रदान करे।
2. संवाद में अंतरंगता और अपनेपन का होना आवश्यक है।
3. अतिथि की उपलब्धियों, विशेषताओं, रुचियों पर भी संवाद किया जाना चाहिए ताकि दर्शकों को व्यक्ति विशेष के बहुआयामी व्यक्तित्व की जानकारी मिल सके।

'फोन-इन' कार्यक्रमों में संवाद :

जनसंचार माध्यम वर्षों पूर्व एकतरफा संचार माध्यम बने रहे परन्तु धीमे-धीमे दर्शकों-श्रोताओं की सहभागिता को महत्वपूर्ण मानते हुए संवादात्मक पद्धति का विकास किया गया। फोन-इन कार्यक्रमों में यह संवादात्मकता सर्वाधिक दिखाई देती है।

एफ.एम. पर प्रचलित अनेक गीत-संगीत संबंधी कार्यक्रमों में श्रोताओं द्वारा फोन करके अपनी पसन्द के गीतों की फरमाइश की जाती है। इन कार्यक्रमों का सबसे रोचक पहलू यह है कि स्वयं कार्यक्रम प्रस्तुतकर्ता श्रोताओं से वार्तालाप करने के लिए उत्सुक रहते हैं। संगीत कार्यक्रमों के मध्य भी हमें सावधान करने के लिए हल्के-फुल्के अंदाज में 'किसका बैण्ड बजेगा' जैसे कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाते हैं जो हमें जागरुक करने में भी समर्थ सिद्ध हो रहे हैं।

इसी प्रकार फोन-इन कार्यक्रम अनेक बार किसी विषय विशेष पर आधारित होते हैं, जिसमें

स्टूडियो में आमंत्रित विषय के विद्धानों से मूल विषय वस्तु पर सर्वप्रथम चर्चा की जाती है फिर दर्शकों और श्रोताओं से प्रश्न आमंत्रित किए जाते हैं। दाखिले के दौरान (विद्यालय एवं महाविद्यालय) तथा परीक्षाओं के मध्य दूरदर्शन ऐसे अनेक संवाद आयोजित करता है जिससे-
क) श्रोताओं की जिज्ञासा का शमन होता है।
ख) विषय की विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है।
इसी प्रकार व्यक्तिगत समस्याओं के निदान हेतु सकारात्मक सोच को बढ़ावा देने वाले संवाद भी टीवी व रेडियो द्वारा प्रसारित किए जाते हैं जिससे निराश श्रोता सकारात्मक ऊर्जा प्राप्त करने में सफल होता है।

आजकल ज्योतिष संबंधी कार्यक्रम भी इस दिशा में निरन्तर सक्रिय हैं ,जहां विभिन्न 'उपायों' की चर्चा तो होती ही है- 'निदानात्मक उपचार' कहाँ से खरीदें यह भी बताया जाता है।

नाटकीय प्रस्तुतिः वास्तव में रेडियो पर संवाद का मूल अर्थ किसी विषय के नाटकीय प्रस्तुतीकरण से लिया जाता है। किसी हल्के-फुल्के विषय से लेकर किसी गंभीर समस्या पर दो पात्रों के मध्य होने वाले संवाद से विषय की जानकारी दी जाती है। विभिन्न नाटकों में संवाद ही प्राणवान ऊर्जा का कार्य करते हैं। विषय वस्तु की विवेचना करने और उसे दर्शकों/श्रोताओं तक सही और स्पष्ट ढंग से पहुँचाने के लिए संवाद ही सहायक होते हैं।

हिन्दी साहित्य कोश भाग 1 में रेडियो नाटक व टीवी नाटक में अन्तर बताते हुए कहा गया है कि - "रेडियो नाटक में तीन उपकरण होते हैं- संलाप, ध्वनि प्रभाव और संगीत। टेलीविजन नाटक में भी इन तीनों उपकरणों का व्यवहार होता है पर इसमें इनके अतिरिक्त अभिव्यक्ति के अन्य साधन भी उपलब्ध हैं- प्राकृतिक अथवा विशेष प्रयोजन से निर्मित दृश्य, वेषभूषा, भावभगिमाएँ और मुख की विभिन्न मुद्राएँ...।' (पृ. 265)

स्पष्ट है कि रेडियो नाटक में तीन तत्वों- संवाद, ध्वनि, संगीत तथा टीवी नाटक में- संवाद, ध्वनि, संगीत, वेशभूषा, प्रकाश का महत्वपूर्ण योगदान होता है। संवादों का अंदाज दोनों को ही विशिष्ट बनाता है।

के. के. नैयर शब्द की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं- "शब्द ही सब कुछ है। शब्द की इतनी विशाल महत्ता किसी भी अन्य विधा में नहीं है। शब्द के बिना न तो कोई कल्पना की जा सकती है, न ही किसी रेडियो नाटक की कथा नाटक की अनुभूति। चूंकि रेडियो नाटकों में मात्र शब्दों तथा आवाज के उतार-चढ़ाव से और उसको समेटने और छोड़ने से बात श्रोता तक पहुँचती है, अतः शब्द का प्रयोग सोद्देश्य होना चाहिए।'

पुस्तक मीडिया लेखन : संपादन- डॉ. रमेश चन्द्र त्रिपाठी, पवन अग्रवाल।

संवाद लेखन की कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्न मानी जा सकती हैं-

क) संवादों के माध्यम से विषय वस्तु का ज्ञान होना चाहिए।
ख) संवाद अपने (विषय वस्तु) के परिवेश के अनुरूप निर्मित हों।
ग) काल एवं परिस्थिति के अनुरूप ही संवादों के लिए भाषा का चुनाव करना चाहिए।
घ) संवाद इतने दीर्घ न हो कि विषय-वस्तु बोझिल प्रतीत होने लगे।
ङ) संवाद संक्षिप्त हो तथा स्वतः पूर्ण भी।
(च) प्रवाहमयी शैली और सरल भाषा के द्वारा संवाद प्रभावी बनते हैं अतः भाषा शैली के प्रयोग के संदर्भ में सजगता अनिवार्य है।
डॉ. सिद्धनाथ कुमार 'रेडियो नाटक की कला' नामक पुस्तक में संवाद के महत्व की चर्चा करते हुए कहते हैं-

"....संवादों के माध्यम से कहानी कही जाती है। पात्रों का परिचय दिया जाता है, आवश्यकतानुसार उनकी रूपरेखा, वेशभूषा, कार्य व्यापार आदि से श्रोताअइों को परिचित कराया जाता है, परिवेश और वातावरण का चित्र प्रस्तुत किया जाता है, पात्रों के भावों-विचारों को व्यक्त किया जाताहै, उनके आपसी संबंधों पर प्रकाश डाला जाता है।' (पृ. 44)

संवाद की प्रमुख विशेषताओं को डॉ. सिद्धनाथ कुमार ने निम्न प्रकार से स्पष्ट किया है। यद्यपि उन्होंने यह विशेषताएँ रेडियो नाटक के संदर्भ में बताई हैं परन्तु यह सभी रेडियो संवादों पर लागू होती हैं-

1. संवादों को सहजता से विभिन्न प्रयोजनों की सिद्धि करनी चाहिए।
2. संवाद का पात्रानुरूप होना आवश्यक है। यह तभी संभव है जब संवाद पात्रों के परिवेश, संस्कार, शिक्षा-दीक्षा को देखते हुए स्वाभाविक लगे।
3. पात्रानुकूलता के साथ पात्र का परिवेश से जुड़ा होना भी आवश्यक है।
4. संवाद चरित्रों के अन्तर्जीवन से उद्भूत हों और हमेशा उनसे जुड़े रहें।
5. संवाद छोटे या बड़े हो सकते हैं पर स्थितियों और चरित्रों से उनका संबंध अवश्य ही बना रहना चाहिए।

आलोचनात्मक दृष्टि का विकास :

वस्तुतः लेखन का मूल-उद्देश्य व्यक्ति के भीतर एक ऐसी दृष्टि का विकास करना है जो उसके मन एवं मस्तिष्क को न केवल समृद्ध बनाए बल्कि सही और गलत में अंतर करना भी सिखा सके। लेखन इसी दृष्टि से हमें सदैव सचते और सजग बनाने वाली प्रक्रिया के रूप में देखा एवं समझा जा सकता है।

आलोचनात्मक दृष्टिकोण- अर्थात विषय की भीतरी समझ, गहराई में उतरने की कला तथा उचित व अनुचित की समझ का विकास करना। यह कला एक दिन अथवा वर्ष में विकसित नहीं होती। इसके लिए आवश्यक है किः-

1. हम सभी अधिकाधिक एवं गंभीर अध्ययन करने की आदत डालें। याद रखिए आप जितना बेहतर पढ़ेंगे उसकी छाप आपके लेखन में भी दिखाई देगी। अतः पढ़ने की आदत-स्वाध्याय की आदत डालें।
2. जिस भी रचना को पढ़ें, उसके रचनाकार की पृष्ठभूमि को भी जानें जिससे रचना विशेष के निर्मित होने की प्रक्रिया का भी परिचय प्राप्त हो।
3. रचना पढ़े एवं विचार-विमर्श करें। विचार करने से कई नए बिन्दु भी मस्तिष्क में सहज ही आ जाते हैं जो एकान्त अध्ययन में कभी छूट भी सकते हैं।
4. याद रखिए सृजन अत्यन्त खूबसूरत कार्य हैं परन्तु यह एक क्षण में नहीं होता। अपने भीतर संवेदना को पूरी तरह पकने-निखरने दीजिए और जब लगे कि प्रक्रिया अपने लगभग अंतिम चरण पर पहुँच चुकी है तब उसका उपयोग लेखन के लिए करें।

रचनाकर्म लेखकीय जीवन की महती आवश्यकता है। लेखक तब तक अपने लेखकीय धर्म का निर्वाह नहीं कर सकता। जब तक तल्लीनतापूर्वक अपने कार्य के लिए समर्पित न हो। समस्त

मीडिया (प्रिंट एवं इलैक्ट्रानिक) लेखन कार्य की निरन्तरता के माध्यम से ही व्यक्ति एवं समाज को सूचना, शिक्षा एवं मनोरंजन प्रदान करती है। निरन्तर चलते '24 घण्टे' चैनल लगातार घट रही घटनाओं से न केवल हमें परिचित कराते हैं बल्कि ब्यौरेवार उसका विवरण भी प्रदान करते हैं। यह विवरण अत्यन्त सतही न हो, इसकी समझ भी चैनल अधिकारी को होना आवश्यक है अन्यथा दर्शक को चैनल बदलते समय नहीं लगता, यह भी सत्य है।

मीडिया अपने समय का सच दिखाता है। प्रिंट हो या इलैक्ट्रानिक वर्तमान से नाता जोड़े बिना मीडिया लेखन संभव नहीं परन्तु यही खबरे आगे चलकर इतिहास का रूप ग्रहण करती हैं। अतः तथ्यात्मक ढंग से खबरों की विवेचना करना मीडिया का लक्ष्य होना चाहिए। समसामयिक जानकारी ही दर्शक और श्रोता को अपने समय के अन्तद्वन्दों से परिचित कराती है। यह अवश्य है कि समसामयिक समाज में घटी किसी घटना के पूर्व संदर्भों के लिए इतिहास का भी सहारा लिया जा सकता है। परिचर्चा, साक्षात्कार आदि में विषय की पृष्ठभूमि की जानकारी वर्तमान की उलझनों, परतों को सुलझाने में सहायक होती हैं।

लेखन कार्य समाज के लिए होता है। समाज में घट रही घटनाओं, हलचलों से लेखन कार्य अलग नहीं हो सकता। हाल ही में एक और ओलम्पिक में प्राप्त अभिनव बिन्द्रा की सफलता जहाँ हमारे लिए गर्व का विषय है वहीं जम्मू-कश्मीर में उत्पन्न पृथकतावादी हालात चिंता का विषय बन गए हैं। लेखक/मीडिया का दायित्व है कि विभिन्न विषयों पर चर्चा करते हुए वह इन मुद्दों को भी स्थान दें ताकि अपने समय और समाज के सत्य को जनता के समक्ष प्रस्तुत किया जा सके।

विभिन्न विषयों पर रचना करने के लिए रचनाकार का शब्द एवं भाषा पर अधिकार होना आवश्यक है। लेखन कार्य सदैव रचनात्मक की माँग करता है। शब्दों एवं विचारों का दोहराव लेखन को नीरस बनाता है। अतः भावों और विचारों में नवीनता ही लेखन को श्रेष्ठ बनाती है। प्रत्येक मुद्दे की तह तक जाकर उसके समस्त बिन्दुओं को रेखांकित करके उस विषय विशेष पर परिचर्चा, टिप्पणी, संवाद अथवा वार्ता लेखन करना रचनाकार का उद्देश्य होना चाहिए ताकि सदैव मौलिक एवं महत्वपूर्ण मुद्दों से जनता का साक्षात्कार हो सके।

6-निष्कर्ष :

इस इकाई के दौरान हमने जाना कि :-

1. विभिन्न विधाओं के लिए लेखन अनिवार्य है। बिना विषय की रूपरेखा बनाए सीधे माइक पर आकर विषयारम्भ करना सरल कार्य नहीं है।
2. लेखन कार्य रचनात्मक ऊर्जा की माँग करता है। रचनात्मकता लेखन एवं प्रस्तुतीकरण

दोनों को विशिष्ट बनाती है।

3. विषय का चुनाव करते समय जनता की संवेदना को जगाने वाले विषयों पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए जिससे विषय पर विचार-विमर्श करके अधिकाधिक लोगों तक विचारों का सम्प्रेषण हो सके।

4. परिचर्चा हेतु मात्र विषय का चयन ही महत्वपूर्ण नहीं है बल्कि प्रतिभागियों का चयन भी अत्यन्त सावधानी से किया जाना चाहिए ताकि जनता भी रुचि से विषय को सुने, समझे तथा प्रतिभागी भी सुलझे ढंग से विषय को स्पष्ट कर सकें।

5. परिचर्चा विभिन्न सदस्यों के मध्य किसी विषय पर किया गया विचार-विमर्श है . वार्ता एक ही व्यक्ति द्वारा द्विपक्षीय जिम्मेदारी का निर्वाह करते हुए प्रस्तुत की जाती है। संवाद दो या दो से अधिक व्यक्तियों के मध्य किया जाता है। दोनों ही क्रम से वक्ता-श्रोता की भूमिका का निर्वाह करते हैं जबकि टिप्पणी किसी विषय पर लिखित विचारों के रूप में प्रस्तुत की जाती है।

लेखन कभी भी वायवी नहीं हो सकता। सदैव समाज के मध्य रहकर समाज के लिए ही लेखन किया जाता है। अतः समाज में घट रही घटनाओं के प्रति संवेदनशील दृष्टिकोण रखकर ही विषय वस्तु पर कलम चलाने का साहस करना चाहिए। जन शिक्षा अत्यन्त दुष्कर दायित्व है। लेखन के माध्यम से इस दायित्व की पूर्ति (किसी सीमा तक ही सही) अवश्य होनी चाहिए।

7-अभ्यास प्रश्न

1. लेखन को आप रचनात्मक ऊर्जा के उपयोग के लिए कितना आवश्यक मानते हैं और क्यों?
2. परिचर्चा और वार्ता के मध्य किन बिन्दुओं के आधार पर अंतर को स्पष्ट करेंगे?
3. क्या एक ही विषय पर वार्ता, परिचर्चा, टिप्पणी तैयार की जा सकती है? यदि हाँ तो तीनों के लिए किन-किन बिन्दुओं को ध्यान में रखने की आवश्यकता है?
4. आप टीवी पर 'परिचर्चा' के किस कार्यक्रम को देखना व सुनना पसन्द करते हैं और क्यों?
5. 'परिचर्चा' कार्यक्रम में संयोजक (संचालक) की भूमिका कितनी आवश्यक है? क्या संयोजक

के रहने से वक्ताओं पर किसी प्रकार का दबाव बनता है?

6. रेडियो वार्ता संवाद तो है परन्तु प्रत्यक्ष न होकर अप्रत्यक्ष संवाद है- कथन को स्पष्ट करते हुए रेडियो वार्ता की भाषिक विशेषताओं का उद्घाटन करें।

7. सरकारी काम-काज के लिए लिखी गई टिप्पणी एवं अनौपचारिक टिप्पणी में अंतर बताएँ।

8. स्वतःपूर्ण टिप्पणी एवं विभागीय टिप्पणी में क्या अंतर है?

9. रेडियो नाटक व टीवी धारावाहिक के संवादों में अंतर समझाएँ।

10. प्रो. वर्नन द्वारा रेडियो वार्ता के संबंध में कुछ प्रमुख बातें बताई गई हैं। उन नियमों के आधार पर रेडियो वार्ता लिखें।

11. किसी भी विषय पर वार्ता/परिचर्चा के लिए लिखित स्क्रिप्ट का क्या महत्व है?

12. मीडिया के तीन प्रमुख दायित्वों में से (सूचना, शिक्षा, मनोरंजन) आप किसे सर्वप्रमुख मानते हैं और क्यों?

संवाद के बिन्दु :

1. आपने विभिन्न विषयों पर होने वाली परिचर्चाओं को देखा एवं सुना होगा। क्या आपको लगता है कि टीवी/रेडियो पर प्रसारित इन परिचर्चाओं में विषय के समस्त पक्षों से पूरी तरह न्याय किया जाता है? यदि नहीं तो इसके लिए आप क्या सुझाव देना चाहेंगे?

2. रेडियो वार्ता का एक उदाहरण प्रस्तुत करें। क्या आप मानते हैं कि निबन्ध लेखन और वार्ता लेखन एक समान हैं? यदि हाँ तो कैसे यदि नहीं तो क्यों नहीं?

3. निरन्तर गीत-संगीत के प्रति बढ़ते आग्रह के मध्य वार्ता को स्थापित करने के लिए आप किन बिन्दुओं की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहेंगे?

4. वार्ता-परिचर्चा टिप्पणी की भाषा में किन-किन अंतरों पर ध्यान देना चाहिए जिससे एक विधा कहीं दूसरी विधा का अतिक्रमण करने से बची रहे।

5. 'संवाद रचना' के संदर्भ में आपके अनुसार किन-किन विशेष बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक है? किसी विषय वस्तु की कल्पना करके अथवा किसी कहानी को नाट्य संवादों में बदलें।

9-प्रयोगादि (रचनात्मक योगदान)

समसामयिक घटनाओं को पढ़ते-देखते सुनते हुए आपके मन में भी अनेक विचार आते होंगे। कई बार लेखनी छूने-न-छूने का द्वन्द भी मन में होता होगा। अब तो आप लेखन के नियमों से परिचित भी हो गए हैं तो नजर डालिए अपने आस-पास के घटनाक्रमों पर और रच डालिए लेखन नया संसार/वार्ता लिख सके तो वार्ता लिखिए नहीं तो संवाद रचना करें। भेजें।

अच्छा लगेगा। प्रतीक्षा रहेगी। याद रखिए लेखन संसार के रूप को बदलने की ताकत रखना है तो आइए मिलकर बनाएं इस संसार को और खूबसूरत। लेखन करें तो हमें जरूर बताएँ।

संन्दर्भ ग्रंथ

1. रेडियो पत्रकारिता और प्रसारण के सिद्धान्त : मनीषा द्विवेदी शशिप्रभा शर्मा
2. इलैक्ट्रानिक मीडिया के सिद्धान्त : रूपचन्द्र गौतम
3. सूचना प्रोद्यौगिकी और जन माध्यम : प्रो. हरिमोहन
4. भेंटवार्ता और प्रेस कॉन्फ्रेन्स : नन्द किशोर त्रिखा।
5. मीडिया लेखन : रमेश चन्द्र त्रिपाठी, पवन अग्रवाल
6. हिन्दी साहित्य कोश : भाग-1 : सं. धीरेन्द्र वर्मा
7. रेडियो नाटक की कला : सिद्धनाथ कुमार
8. रेडियो वार्ताशिल्प : सिद्धनाथ कुमार
9. प्रयोजनमूलक हिन्दी : विनोद गोदरे
10. प्रयोजनमूलक हिन्दी प्रक्रिया और स्वरूप : कैलाशचन्द्र भाटिया
11. प्रयोजनमूलक हिन्दी के आधुनिक आयाम : डॉ. महेन्द्र सिंह राणा